क्या नजात के लिए

सिर्फ़ तौहीद का कलिमा पढ़ना काफ़ी है?

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी

अनुवाद

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान और बड़ा कृपाशील है।"

क्या नजात के लिए तौहीद का कलिमा काफ़ी है?

सवाल :

"जिस आदमी ने 'ला इला ह इल्लल्लाह' कहा वह जन्नत में दाख़िल होगा।" (हदीस)

इस हदीस में पहले तो रसूल पर ईमान लाए बिना ही जन्नत की खुशख़बरी सुनाई गई है, हालाँकि क़ुरआन में रसूल पर ईमान लाने की जिस ज़ोरदार ढंग से ताकीद की गई है वह ज़ाहिर है। यहाँ तक कि कोई रसूल पर ईमान लाए बिना न हिदायत की राह पा सकता है, न उसकी नजात हो सकती है, न आख़िरत की ज़िन्दगी में उसके लिए कोई हिस्सा है।

इस हदीस में नेक अमल की भी कोई शर्त नहीं है। अगरचे नेक आमाल ईमान का कोई अंश नहीं है, मगर क़ुरआन मजीद में आख़िरत की कामयाबी व कामरानी, इनाम व इकराम और जन्नत की ख़ुशख़बरी अपने ईमानवाले नेक बन्दों ही को दी गई है। जैसा कि नीचे दी गई आयतों से वाज़ेह होता है—

"जो लोग ईमान ले आए और जिन्होंने नेक अमल किए वे यक़ीनन बेहतरीन मख़लूक़ (प्राणी) हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-98, बैयिनह, आयत-7)

"उनका बदला उनके रब के यहाँ दायमी क़ियाम की जन्नतें हैं, जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी, वे उनमें हमेशा-हमेशा रहेंगे।"
(क़ुरआन-सूरा-98, बैयिनह, आयत-8)

"और जिन लोगों ने हमारी आयतों को मान लिया और नेक अमल किए, उनको हम ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेंगे, जिनके नीचे

नहरें बहती होंगी, जहाँ वे हमेशा-हमेशा रहेंगे।"

(क़ुरआन, सूरा-4, निसा, आयत-57)

"जो अल्लाह पर ईमान लाता है और नेक अमल करता है, अल्लाह उसके गुनाह बख़्श देगा और उसे ऐसी जन्नतों में दाख़िल करेगा, जिनके नीचे नहरें बहती होंगी। ये लोग हमेशा-हमेशा उनमें रहेंगे।" (क़ुरआन, सूरा-64, तग़ाबुन, आयत-9)

हमारी सतही नज़रों में यह हदीस क़ुरआन की शिक्षाओं के ख़िलाफ़ है। मेहरबानी करके अपनी इल्मी सलाहियत और तहक़ीक़ी नज़र से मुस्तफ़ीद (लाभान्वित) फ़रमाकर हमें मुत्मइन फ़रमा दें। आभारी होंगे।

(हक़ का एक तालिब, निज़ामाबाद)

जवाब :

सबसे पहले यह ग़लतफ़हमी दूर हो जानी चाहिए कि यह हदीस क़ुरआन के ख़िलाफ़ है। क़ुरआन मजीद में भी एक जगह फ़रमाया गया है—

"जिन लोगों ने कहा कि अल्लाह हमारा रब है और फिर वे इसपर साबित क़दम रहे, यक़ीनन उनपर फ़रिश्ते नाज़िल होते हैं और उनसे कहते हैं कि 'न डरो, न ग़म करो और ख़ुश हो जाओ उस जन्नत की बशारत (ख़ुशख़बरी) से जिसका तुम से वादा किया गया है।" (क़ुरआन, सूरा-41, हा-मीम-सजदा, आयत-30)

देखिए, यहाँ भी वही बात दूसरे शब्दों में कही गई है जो आपकी नक़ल की गई हदीस में पाई जाती है। जिस तरह इस आयत से यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि नजात, बख़शिश और जन्नत में दाख़िल होने के लिए तौहीद का अक़ीदा काफ़ी है और रसूल पर ईमान लाने और नेक अमल करने की ज़रूरत नहीं, उसी तरह ऊपर दी गई हदीस से भी ऐसा नतीजा निकालना सही नहीं। इसी से यह समझा जा सकता है कि जिस तरह क़ुरआन मजीद की यह आयत उन आयतों से नहीं टकरातीं जो आपने पेश फ़रमाई हैं, उसी तरह यह हदीस भी उन आयतों का खण्डन नहीं करती।

हदीस और क़ुरआन दोनों को समझने में एक ग़लती आमतौर पर पेश

आती है और वह-यह है कि क़ुरआन और हदीस की किताबों को लोग आम किताबों की तरह देखना चाहते हैं और यह समझते हैं कि जिस तरह दूसरी किताबों में एक-एक विषय को एक ही जगह पर पूरे विस्तार और व्याख्या के साथ बयान करने की कोशिश की जाती है, उसी तरह क़ुरआन और हदीस में भी की गई होगी, लेकिन अस्ल में यह मामला नहीं है। क़ुरआन 23 साल की अवधि में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न हालात और ज़रूरतों के मुताबिक़ थोड़ा-थोड़ा करके नाज़िल हुआ है। उसी तरह हदीसों में मुहम्मद (सल्ल॰) की उन बातों को जमा किया गया है, जो 23 साल के लम्बी अवधि में आप (सल्ल॰) ने विभिन्न अवसरों पर विभिन्न हालात में ज़रूरत के मुताबिक़ कही हैं।

इन दोनों में एक चीज़ तो इस्लाम की मूल शिक्षाएँ हैं, जिसे बार-बार अलग-अलग तरीक़ों से दोहराया गया है। दूसरी चीज़ इस्लामी हिदायत की तफ़सीलात हैं, जिनको कहीं इकट्ठे और कहीं अलग-अलग विभिन्न हालतों और विभिन्न ज़रूरतों के लिहाज़ से बयान किया गया है।

इसलिए सही नतीजे तक पहुँचने के लिए ज़रूरी है कि उन सबपर मजमूई हैसियत से नज़र डाली जाए। वरना अगर किसी टुकड़े को कहीं से ले लिया गया और दूसरे सम्बन्धित हिस्सों की अनदेखी करके उसी को एक स्थाई चीज़ समझ लिया गया तो यक़ीनन ग़लतफ़हमी पैदा होगी।

मिसाल के तौर पर क़ुरआन में कहीं तो अल्लाह पर ईमान लाने पर ज़ोर दिया गया है जैसा कि ऊपर बयान किया गया है। कहीं सिर्फ़ आख़िरत के दिन के इक़रार की ताकीद है। (क़ुरआन, सूरा-6, अनआम, आयत-4)

कहीं ख़ुदा के साथ आख़िरत के दिन का ज़िक्र है। (क़ुरआन, सूरा-2, बक़रा-आयत-8) कहीं ख़ुदा के साथ रसूलों पर ईमान लाने का हुक्म है। (क़ुरआन, सूरा-3, आले-इमरान, आयत-18)। कहीं ख़ुदा के साथ मुहम्मद (सल्ल॰) पर ईमान लाने की तालीम है। (क़ुरआन, सूरा-24, नूर, आयत-9)। कहीं आख़िरत के दिन और अल्लाह की किताब पर एतिक़ाद रखने की ज़ोरदार ताक़ीद है। (क़ुरआन, सूरा-4, निसा, आयत-1) कहीं ख़ुदा और नबियों, और फ़रिश्तों के इनकार को कुफ़्र और फ़िस्क़ क़रार दिया गया है।

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-12)। कहीं ईमान के पाँच अंग बताए गए हैं। यानी अल्लाह पर ईमान, रसूलों पर ईमान, किताबों पर ईमान, फ़रिश्तों पर ईमान और आख़िरत के दिन पर ईमान।

(क़ुरआन, सूरा-2, बक़रा, आयत-22)

इन अलग-अलग जगहों पर आई इन आयतों में कोई विरोधाभास नहीं है, बल्कि एक जगह पर ईमानियात को इकट्ठा बयान किया गया है। दूसरी जगहों पर उनमें से एक-एक दो-दो को मौक़ा और ज़रूरत के हिसाब से ज़्यादा ज़ोर देकर पेश किया गया है। अब अगर कोई आदमी इस सच्चाई की अनदेखी करके और किसी एक आयत को लेकर यह दावा कर दे कि मोमिन होने के लिए सिर्फ़ खुदा की तौहीद पर, या सिर्फ़ खुदा और आख़िरत के दिन पर, या फ़क़त अल्लाह और रसूलों पर ईमान लाना काफ़ी है और यह गुमान करके भी कुछ का इक़रार इनसान के लिए फ़ायदामन्द हो सकता है, तो अस्ल में यह क़ुरआन की ज़बान और उसके बयान करने के अनदाज़ को न जानने का नतीजा होगा।

इसी तरह क़ुरआन में कहीं सिर्फ़ ईमान पर ज़ोर दिया गया है—

> "जिन लोगों ने कहा कि अल्लाह हमारा रब है और फिर वह उसपर साबित क़दम रहे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम-सजदा, आयत-3)

और कहीं ईमान के साथ नेक अमल और तक़वा को नजात के लिए शर्त ठहराया गया है—

> "अगर तुम ईमान और खुदातर्सी की रविश पर चलोगे तो तुमको बड़ा अज्र मिलेगा।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-179)
>
> "ज़माने की क़सम, इनसान वास्तव में घाटे में है, सिवाए उन लोगों के जो ईमान लाए, और नेक अमल करते रहे और एक-दूसरे को हक़ की नसीहत और सब्र की तलक़ीन करते रहे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-110 अस्र, आयतें-1 से 3)

फिर नेक आमाल में से भी किसी जगह एक की ताकीद है और किसी

जगह दूसरे की। कहीं नमाज़ और ज़कात पर ज़ोर दिया जा रहा है, कहीं सच्चाई और अच्छे मामलात पर, कहीं पाकी और पाकीज़गी पर, कहीं सगे-सम्बन्धियों से अच्छे सुलूक और रिश्तेदारों के हुक़ूक़ पर कहीं हलाल रोज़ी और हराम चीज़ों को छोड़ने को कहा जा रहा है और उनमें से हरेक को अपनी-अपनी जगह इस तरह बयान किया गया है कि मानो फ़लाह और नजात उसी पर निर्भर है। अगर कोई शख़्स इन हुक्मों और आदेशों को नज़रअन्दाज़ करते हुए सिर्फ़ किसी एक आयत को ले और उससे यह नतीजा निकाले कि क़ुरआन सिर्फ़ ईमान पर नजात की खुशख़बरी सुनाता है इसके बग़ैर कि उसके साथ नेक आमाल हों, या नेक आमाल में से सिर्फ़ नमाज़ या ज़कात, या पाकीज़गी, या सगे-सम्बन्धियों से अच्छा सलूक, या किसी और चीज़ को काफ़ी समझता है, बग़ैर उसके कि उसके साथ दूसरे अच्छे आमाल भी हों, तो इसे उसकी समझ की कमी ही कहा जा सकता है।

क़ुरआन तो अपनी मजमूई तालीम में फ़िक्री (वैचारिक) और अमली ज़िन्दगी के लिए एक मुकम्मल स्कीम पेश करता है। इसमें ईमानियात, अख़लाक़ी तालीमात और अमल क़ानून सब अपनी-अपनी मुनासिब जगह पर हैं। मगर उसने इन चीज़ों को मन में अच्छी तरह बिठाने के लिए एक ख़ास हकीमाना तरीक़ा अपनाया है। और वह यह है कि एक-एक हिदायत को वह अलग-अलग मुनासिब मौक़ों पर दिलों में उतारता जाता है।

कभी कोई ख़ास घटना घट गई। देखा कि इस वक़्त ज़ेहन एक ख़ास हिदायत क़बूल करने के लिए तैयार है, तुरन्त वह हिदायत नाज़िल कर दी गई और इस ज़ोरदार अन्दाज़ में नाज़िल की गई कि दिल और रूह में पूरी तरह उतर गई।

कभी किसी ख़ास गरोह की तालीम पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को लगाया गया और उस गरोह के ख़ास हालात को देखते हुए उसी प्रकार की हिदायतें दी गईं जो उसकी इस्लाह के लिए ज़रूरी थीं। कभी कोई ख़ास तालीम देने की ज़रूरत पेश आई तो पहले मिसालों से, पिछली क़ौमों की नज़ीरों से, नबियों के हालात से, आसमान और ज़मीन पर रहनेवाली मख़लूक़ की गवाहियों से दिलों को उसको क़बूल करने के लिए तैयार किया गया।

फिर वह तालीम दी गई, ताकि उसका असर हो और वह रूह में उतर जाए।

तालीम व तरबियत का यह हकीमाना तरीक़ा इस लिए अपनाया गया था कि अल्लाह तआला का मक़सद सिर्फ़ एक स्कीम या एक हिदायतनामा तैयार कर देना नहीं था, बल्कि वास्तव में अपनी स्कीम को लागू करना और इनसान की ज़िन्दगी में इन्क़िलाब पैदा करना था जिसके लिए दर्जा-दर्जा एक ख़ास तरतीब से, मौक़ा-महल को देखते हुए और इनसान की नफ़सियात की रिआयत करते हुए लागू करना था।

ठीक-ठीक उसी हकीमाना तरीक़े की पैरवी नबी (सल्ल॰) ने भी फ़रमाई है। 23 साल की पैग़म्बराना ज़िन्दगी में आप (सल्ल॰) हर वक़्त इस्लाम के प्रचार-प्रसार और लोगों की इस्लाह व हिदायत में लगे रहते थे। हर प्रकार के लोग आप (सल्ल॰) के पास आते थे। हरेक की मानसिकता, हरेक की सलाहियत, हरेक की नैतिकता, एतिक़ाद (आस्था) और अमली हालत अलग-अलग थी। अगर आप (सल्ल॰) हर वक़्त हर आदमी से एक ही लगी-बन्धी बात कहते और एक ही क़िस्म की हिदायतें देकर विदा कर दिया करते तो आपको वह कामयाबी नसीब न होती जिसने इतिहास में इन्क़िलाब पैदा कर दिया। आप (सल्ल॰) उस हकीमे-मुतलक़ (यानी अल्लाह) के शागिर्द थे और उस हकीम ने हिदायत का जो तरीक़ा अपनी किताब में बताया था उसी की पैरवी आप (सल्ल॰) भी करते थे। आप (सल्ल॰) की शिक्षाएँ मौक़ा-व-महल देखकर हुआ करती थी। जिस वक़्त जिस बात का मौक़ा होता था उस वक़्त वही बात आपकी ज़ुबान से निकलती थी और सीधी दिलों में उतर जाती थी।

ये चीज़ें जो बिखरी हुई हालत में हदीसों में फैली हुई हैं, उन सबको मजमूई हैसियत से देखिए तब आपको मालूम होगा कि नबी (सल्ल॰) की पूरी तालीम क्या थी और आप (सल्ल॰) किस तरह उसे मन में बिठा देते थे। अगर आप इन इकाइयों को जोड़कर एक मुनज़्ज़म अदद न बनाएँगे और एक-एक आदमी को अलग-अलग लेकर उससे अलग-अलग नतीजे निकालने लगेंगे तो वैसी ही ग़लती पेश आएगी जैसी क़ुरआन की आयतों को अलग-अलग देखने से पेश आ सकती है।

इस क़ायदे को ध्यान में रखते हुए उन हदीसों पर नज़र डालिए जिनमें

नबी (सल्ल०) ने इस्लाम की शिक्षाएँ विभिन्न तरीक़ों से बयान की हैं।

एक बार नबी (सल्ल०) सफ़र में थे। एक देहाती ने आकर आप (सल्ल०) के ऊँट की नकेल थाम ली और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे कुछ ऐसी चीज़ बताइए जो मुझको जन्नत से क़रीब और दोज़ख़ से दूर कर दे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "अल्लाह की बन्दगी कर और उसके साथ ख़ुदाई में किसी को शरीक न कर, नमाज़ का पाबन्द रह, ज़कात दे और क़रीबी रिश्तेदारों के हुक़ूक़ अदा कर।" (हदीस)

देखिए, यहाँ एक ऐसा आदमी सामने है जो आप (सल्ल०) को रसूल मानता है। आख़िरत की ज़िन्दगी को भी मानता है। इस्लाम क़बूल कर चुका है। उसको ईमानियात और अख़लाक़ियात (नैतिकता) की तफ़सील नहीं चाहिए। वह सिर्फ़ अल्लाह की क़ुर्बत हासिल करने के लिए हिदायत माँग रहा है। आप (सल्ल०) उसकी ज़रूरत के मुताबिक़ उसको तालीम देते हैं कि जिस अक़ीदे पर इस्लाम की बुनियाद क़ायम हैं उसमें मज़बूत हो जा। और अल्लाह के हुक़ूक़ और बन्दों के हुक़ूक़ अदा किए जा।

एक दूसरे मौक़े पर एक देहाती आया और उसने आप (सल्ल०) से पूछा, "मुझे कोई ऐसा अमल बताइए जो मुझको जन्नत में पहुँचा दे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "वह अमल यह है कि तू सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी करे और उसके साथ किसी को शरीक न ठहराए, जो नमाज़ फ़र्ज़ की गई है उसका पाबन्द रहे, जो ज़कात तय कर दी गई है वह अदा करता रहे और रमज़ान के रोज़े रखे।"

उसने कहा, "अल्लाह की क़सम, मैं न उससे ज़्यादा कुछ करूँगा, न कम।" जब वह चला गया तो आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "जो आदमी जन्नतवालों में से किसी को देखकर आँखें ठण्डी करना चाहता हो, वह उस आदमी को देख ले।" (हदीस)

अब नबी (सल्ल०) की तालीम और उस आदमी के जवाब और फिर

आप (सल्ल॰) की आख़िरी बात पर विचार कीजिए। एक सच्चा मुसलमान सामने था। नबी (सल्ल॰) की हर हिदायत को सच्चे दिल से क़बूल करने को तैयार था। उसको सिर्फ़ यह समझने की ज़रूरत थी कि ख़ुदा की जन्नत में दाख़िल होने के लिए बड़ी-बड़ी रियाज़तों और मुजाहिदों की ज़रूरत नहीं। चिल्ले खिंचने और रात-रात भर वज़ीफ़े पढ़ने की ज़रूरत नहीं। उसी दुनियादारी की ज़िन्दगी में अगर तू अपने एतिक़ाद को शिर्क से पाक रखे और ख़ुदा के दिए हुए फ़र्ज़ों को अदा करता रहे तो तुझे जन्नत मिल सकती है।

उसके बाद एक-दूसरे क़िस्म की हदीस को देखिए—

"मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) को जब नबी (सल्ल॰) ने एक मिशन पर भेजा तो फ़रमाया कि तुम किताबवालों की एक क़ौम में पहुँचोगे। सबसे पहले उनको इस बात की दावत देना कि 'ला इला-ह इल्लल्लाह' की शहादत दें और यह स्वीकार करें कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ। जब वे उसको मान लें तो उनसे कहना कि अल्लाह ने तुमपर ज़कात भी फ़र्ज़ की है जो तुम्हारे मालदारों से ली जाएगी और तुम्हारे ग़रीबों को दी जाएगी। जब वे उसको भी मान लें तो ख़बरदार उनके माल को हाथ न लगाना और मज़लूम की बद्दुआ से बचना कि उसके और ख़ुदा के बीच कोई हिजाब नहीं।" (हदीस)

इन हदीसों में नबी (सल्ल॰) ने इस्लाम का दस्तूरी क़ानून बयान फ़रमाया है और वह यह है कि जो कोई आदमी अल्लाह को एक माने और मुहम्मद (सल्ल॰) को ख़ुदा का पैग़म्बर माने तो वह इस्लाम के दायरे में आ जाता है और इस्लामी हुकूमत का नागरिक बन जाता है। यह बात कि वह वास्तव में मोमिन है या नहीं, इसका फ़ैसला अल्लाह करनेवाला है। हमें इसका फ़ैसला करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि—

"मुझको लोगों के दिल चीरने और उनके बातिन को टटोलने का बिलकुल भी हुक्म नहीं दिया गया।"

जान व माल और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त (Security) सिर्फ़

कलिमा-एं तौहीद और रिसालत के एतिक़ाद के इक़रार से क़ायम हो जाती है। उसके बाद किसी को उसपर सन्देह करने का हक़ नहीं रहता। अलबत्ता अगर कोई आदमी अल्लाह का हक़ या बन्दों का हक़ अदा करने से इनकार करे तो उसको अपराध की गम्भीरता के अनुसार सज़ा दी जा सकती है।

देखिए, यहाँ कोई आदमी सामने नहीं था, बल्कि एक इलाक़े के गवर्नर को क़ानूनी हिदायतें दी जा रही थीं। इसलिए केवल क़ानून की सीमाएँ बयान करने को ज़रूरी समझा गया। यह नहीं कहा गया कि तौहीद और रिसालत के इक़रार और फ़र्ज़ों को अदा कर लेने भर से हर आदमी के लिए जन्नत वाजिब हो जाएगी। इस अवसर पर आप (सल्ल॰) ने हर आदमी को तमाम ईमानियात और अमली क़ानून से आगाह करने का हुक्म भी नहीं दिया, क्योंकि यहाँ सिर्फ़ यह समझाना था कि इस्लाम और ग़ैर-इस्लाम की सीमाएँ क्या हैं और इस्लाम की सीमा में दाख़िल होते ही इनसान को क्या दस्तूरी अधिकार हासिल हो जाते हैं। यह ठीक-ठीक उस आयत के मुताबिक़ है जिसमें कहा गया है—

> "फिर अगर वे तौबा कर लें और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात अदा करें, तो उन्हें छोड़ दो।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-5)

इसलिए किसी आदमी को इन क़ानूनी हिदायतों से यह नतीजा निकालने का हक़ नहीं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) सिर्फ़ तौहीद और रिसालत के इक़रार और नमाज़ और ज़कात अदा करने तक इस्लाम को सीमित रखते थे और उनके सिवा किसी और चीज़ की कोई अहमियत आप (सल्ल॰) की नज़र में न थी।

ऊपर आपने दो प्रकार की हदीसें देखीं। एक ऐसी हदीसें जिनके मुख़ातिब ख़ास लोग थे। उनमें नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों की विशेष परिस्थितियों को देखते हुए तालीम दी है। दूसरी वे हदीसें जिनमें ख़ास लोगों से बहस न थी, बल्कि दस्तूरी क़ानून की नज़र में मुस्लिम और ग़ैर- मुस्लिम का उसूली फ़र्क़ और मुसलमानों के दस्तूरी अधिकार बयान करना था। इन दोनों क़िस्म की हदीसों के बयान के अन्दाज़ में आपको नुमायाँ फ़र्क़ दिखाई देता है। एक जगह आप (सल्ल॰) लोगों के रूहानी (आध्यात्मिक) रहनुमा की

हैसियत से बात कर रहे हैं, दूसरी जगह आप (सल्ल॰) की हैसियत एक क़ानूनदाँ और एक नई राजनीतिक व्यवस्था के संस्थापक की है।

अब इन हदीसों पर नज़र डालिए जिनमें नबी (सल्ल॰) ने अरब के बेहतरीन चुने हुए लोगों को सम्बोधित किया है जिनको आप (सल्ल॰) ने अपने दौर के अरब सोसाइटी में से छाँटकर आपने अपनी सोहबत में रखा था और ख़ासतौर पर उनको तालीम व तर्बियत दे रहे थे, ताकि वे इस्लाम की स्प्रिट को ठीक-ठीक समझकर आपके मिशन को फैलाने में मददगार हों।

एक बार हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) सवारी पर चले जा रहे थे और मआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) के पीछे बैठे थे। आप (सल्ल॰) ने तीन बार ठहर-ठहर कर आवाज़ दी, "ऐ मआज़-बिन-जबल!"। हज़रत मआज़ (रज़ि॰) ने हर बार जवाब दिया, "लब्बैक ऐ अल्लाह के रसूल व सादिक़"। इस तरह तीन बार पुकारकर जब आप (सल्ल॰) ने उनका ध्यान अच्छी तरह अपनी ओर कर लिया और आप (सल्ल॰) को यक़ीन हो गया कि जो बात आप (सल्ल॰) कहना चाहते हैं सुननेवाला उसको ख़ास अहमियत के साथ सुनेगा, तब फ़रमाया—

"जानते हो बन्दों पर ख़ुदा का क्या हक़ है?"

उन्होंने जवाब दिया,"अल्लाह और उसके रसूल को ज़्यादा पता है।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह का हक़ उसके बन्दों पर यह है कि सिर्फ़ उसी की बन्दगी करें और किसी को उसका शरीक न ठहराएँ।"

थोड़ी दूर आगे चलकर फिर आवाज़ दी, "ऐ मआज़-बिन-जबल!" उन्होंने जवाब दिया, "लब्बैक ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) व सादिक़"। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"फिर जानते हो कि बन्दों का अल्लाह पर क्या हक़ है, जबकि वे ऐसा करें?"

उन्होंने जवाब दिया, "अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) को ज़्यादा इल्म है।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"उनका हक़ यह है कि अल्लाह उनको अज़ाब न दे।"

हज़रत मआज़ (रज़ि॰) ने यह सुनकर पूछा, "क्या मैं लोगों को यह ख़ुशख़बरी सुना दूँ।" फ़रमाया—

"नहीं, उनको बशारत न दो, क्योंकि वे इसी पर भरोसा कर बैठेंगे।"

यानी, आम लोग इसकी स्प्रिट को न समझेंगे और इस ग़लतफ़हमी में पड़ जाएँगे कि सिर्फ़ ज़बानी शहादत का कलिमा पढ़ लेने से नजात मिल जाएगी।

एक और मौक़े पर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अपने ख़ास सहाबियों के बीच बैठे थे। यकायक आप (सल्ल॰) उठे और वहाँ से चले गए। जब बहुत देर हो गई तो सहाबियों को चिन्ता होने लगी कि कहीं कोई घटना तो नहीं घट गई और वे ढूँढ़ने निकल पड़े।

सबसे पहले जो साहब गए वे हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) थे। वे आप (सल्ल॰) को ढूँढ़ते हुए अनसार के एक बाग़ तक पहुँचे, जिसका दरवाज़ा खोजने के बावजूद न मिला। आख़िरकार एक छोटी-सी नहर के रास्ते से अन्दर पहुँचे। देखा कि आप (सल्ल॰) वहाँ मौजूद हैं। आप (सल्ल॰) ने पूछा कि कैसे आए? उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। आप (सल्ल॰) ने अपनी दोनों जूतियाँ उठाकर उन्हें दे दीं और कहा, "इन्हें ले जाओ और बाग़ के पीछे जो आदमी ऐसा मिले जो ला इला-ह इल्लल्लाह की शहादत देता हो और उसपर दिल से यक़ीन रखता हो उसे जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दो।" हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) इस आदेश का पालन करने के लिए चल पड़े।

रास्ते में सबसे पहले हज़रत उमर (रज़ि॰) मिले। उन्होंने पूछा ये जूतियाँ कैसी हैं? उन्होंने कहा, 'अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की जूतियाँ हैं और आप (सल्ल॰) ने मुझे ऐसा और ऐसा कहने का हुक्म दिया है। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने यह सुनकर उनको एक ज़ोर का थप्पड़ रसीद किया और कहा कि वापस जाओ। वे गिरते-पड़ते भागे और जाकर आप (सल्ल॰) से सारा क़िस्सा कह सुनाया। इतने में उमर (रज़ि॰) भी वहाँ पहुँच गए। आप (सल्ल॰) ने पूछा,

"उमर! किस चीज़ ने तुमको इस हरकत के लिए आमादा किया?" उन्होंने जवाब दिया, "मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान, क्या आपने अबू-हुरैरा (रज़ि॰) को ऐसा कहने के लिए भेजा था? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ"। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने कहा, "ऐसा न कीजिए, मुझे डर है कि लोग इसी पर भरोसा कर बैठेंगे, उन्हें अमल के लिए छोड़ दीजिए। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अच्छा, तो उन्हें अमल के लिए छोड़ दो।"

एक बार हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुए तो देखा कि आप (सल्ल॰) एक सफ़ेद कपड़ा ओढ़े हुए लेटे हैं। वे वापस हो गए। दोबारा हाज़िर हुए तो आप (सल्ल॰) उठ चुके थे। उनको देखकर फ़रमाया—

> "जिस बन्दे ने कह दिया कि अल्लाह के सिवा कोई ख़ुदा नहीं और उसी अक़ीदे पर जान दी, वह ज़रूर जन्नत में दाख़िल होगा।"

उन्होंने पूछा, "अगरचे उसने ज़िना (व्यभिचार) किया हो? अगरचे उसने चोरी की हो?" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ, चाहे वह ज़ानी हो या चोर।" उन्होंने फिर यही पूछा और आप (सल्ल॰) ने फिर वही जवाब दिया। उन्होंने तीसरी बार पूछा। आप (सल्ल॰) ने फिर फ़रमाया—"अगरचे उसने व्यभिचार किया हो, अगरचा उसने चोरी की हो? अबू-ज़र की नाक ख़ाक-आलूद हो।"

इन तीनों हदीसों पर ग़ौर कीजिए। सम्बोधन उन लोगों से किया जा रहा है जिनके इस्लाम के कामिल होने पर किसी को सन्देह नहीं है। वे क़ुरआन की तालीमात और इस्लामी क़ानून से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं, और उनपर पूरी तरह अमल भी कर रहे हैं। उनके सामने आप (सल्ल॰) ने जो कुछ भी फ़रमाया, उससे यह आशंका करने की गुंजाइश ही न थी कि वे तौहीद के सिवा इस्लाम के दूसरे उसूली अक़ीदों और हुक़ूक़ और फ़राइज़ को ग़ैर-ज़रूरी समझ लेंगे। इसलिए उनको आप (सल्ल॰) ने यह सच्चाई बता दी कि इस्लाम में अस्ल और बुनियादी चीज़ तौहीद (एकेश्वरवाद) का अक़ीदा है। नबियों के आने का अस्ली मक़सद यही है कि इनसान को ख़ुदा

के सिवा हरेक की बन्दगी से निकालें और सिर्फ़ ख़ुदा का बन्दा बनाएँ। दुनिया और आख़िरत में इनसान की फ़लाह और कामयाबी भी इसी पर निर्भर है कि वह ग़ैर-अल्लाह की बन्दगी से निकले और बस एक ख़ुदा का बन्दा बनकर रहे।

यह सच्चाई जिसने समझ ली और जिसके दिल में यह बात ख़ूब बैठ गई कि अकेले एक अल्लाह के सिवा दुनिया की किसी चीज़ को किसी प्रकार की ख़ुदाई हासिल नहीं है। और सिर्फ़ एक ख़ुदा ही है जिसकी इताअत, फ़रमाबरदारी, गुलामी और बन्दगी उसको करनी है, वह यक़ीनन अपनी ज़िन्दगी में सीधा रास्ता अपनाएगा और टेढ़े रास्तों से बचकर चलेगा। उसके मिज़ाज में सच्चाई होगी। सदाक़त को क़बूल करेगा। मुत्तक़ी और परहेज़गार होगा। वह तमाम हुक़ूक़ अदा करेगा जिनको ख़ुदा ने हक़ ठहराया है और वह तमाम फ़राइज़ बजा लाएगा जिनको ख़ुदा ने फ़र्ज़ क़रार दिया है।

लिहाज़ा यही एक चीज़ उसकी सोच को भी ठीक रखेगी और उसके ज़ाहिरी अख़लाक़ और आमाल भी सालेह रहेंगे। रही यह बात कि इनसानी कमज़ोरी की बुनियाद पर कभी उससे गुनाह हो भी जाए तो ख़ुदा पर ईमान उसे मजबूर करेगा कि वह उस गुनाह से तौबा करे। क्योंकि ईमान के साथ यह नामुमकिन है कि वह गुनाह और बदकारी पर जमा रहे।

ऊपर दी गई हदीसों और उसी जैसी दूसरी हदीसों का यही सार सहाबा ने समझा था और यही उनकी सही व्याख्या है। उनमें से किसी ने भी यह नहीं सोचा कि बस तौहीद का अक़ीदा ही काफ़ी है। उसके बाद न रिसालत को मानने की ज़रूरत है, न अल्लाह के कलाम की। न पाकीज़ा अख़लाक़ चाहिए, न अच्छे आमाल। ऐसा ग़लत भाव वह किस तरह समझ सकते थे, जबकि उनको पूरी तरह बता दिया गया था कि इस्लाम क्या है और उसमें किन चीज़ों का एतिक़ाद, किन इबादतों की पाबन्दी, किन सीमाओं की रक्षा, किन क़ानूनों की पैरवी, और किन तरीक़ों से बचना ज़रूरी है।

यही वजह है कि नबी (सल्ल०) ने यह तालीम सिर्फ़ उन लोगों को दी जिनका इस्लाम कामिल था और आप (सल्ल०) ने लोगों के सामने उसको बयान करने से मना फ़रमा दिया।

मआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) वाली हदीस में आप (सल्ल॰) ने उसकी वजह भी ख़ुद ही बयान फ़रमा दी है कि आम लोग इसको सुनकर ग़लतफ़हमी में पड़ जाएँगे।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) वाली हदीस में एक आदमी को सन्देह हो सकता है कि आप (सल्ल॰) ने शायद इसे लोगों तक पहुँचाने की हिदायत फ़रमाई थी। स्वयं हज़रत उमर (रज़ि॰) को भी ऐसा ही सन्देह हुआ था। लेकिन वास्तव में आप (सल्ल॰) का मक़सद ऐसे लोगों को ख़ुशख़बरी देना था जो इस्लाम में कामिल थे। चुनाँचे। जब हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अपना अन्देशा पेश किया तो आप (सल्ल॰) ने उनकी राय से सहमति व्यक्त कर दी।

इसी तरह हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) वाली हदीस में भी कोई आदमी यह सन्देह नहीं कर सकता कि 'ला इला-ह इल्लल्लाह' से मुराद केवल उसको ज़बान से अदा करना है। इसी लिए कि दूसरे मौक़े पर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि जन्नत में दाख़िल होने के लिए तौहीद पर कामिल ईमान की ज़रूरत है। इसे अलग-अलग अन्दाज़ और अलग-अलग शब्दों में बयान किया गया है और सभी इसी भाव को व्यक्त करते हैं।

बहरहाल यह अच्छी तरह समझ लीजिए कि जिन हदीसों में तौहीद की अहमियत बयान की गई है उनका ख़िताब अस्ल में उन लोगों से है जो तमाम शर्तों के साथ इस्लाम में दाख़िल हो चुके हैं, न कि उन लोगों से जो मुसलमान ही न हों। फिर मुसलमानों को भी तौहीद के एतिक़ाद पर जन्नत में दाख़िल होने की ख़ुशख़बरी देने से यह मुराद नहीं कि बस ख़ुदा को मान लो, फिर जिस प्रकार की चाहो, अक़ीदे की बुराई, गुनाह और नाफ़रमानी, बिदअत वग़ैरा में घिरे रहो, बल्कि इसका मक़सद यह बताना है कि मुसलमान की कामयाबी सबसे बढ़कर तौहीद के एतिक़ाद की सेहत और मज़बूती पर है। इसमें अगर ख़राबी आ गई तो फिर कोई चीज़ फ़ायदेमन्द नहीं हो सकती और अगर यह सही और मज़बूत हो तो आख़िरकार कामयाबी मिलकर रहेगी। (तरजमानुल-क़ुरआन, मई 1937 ई॰)

—❖—